

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 71 — भगवान की इन्द्रप्रस्थ-यात्रा

5 October 2026



इन्द्रप्रस्थ के द्वार पर राजा युधिष्ठिर त्रिलोकीनाथ को अपनी बाँहों में भर लेते हैं — और उस एक आलिंगन में संसार का हर शोक मौन हो जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस इकहत्तरवें अध्याय में शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को उद्धव का उत्तर सुनाते हैं, और फिर भगवान के संग द्वारका से उस नगर तक चलते हैं जिसकी हर गली और हर हृदय उनके स्वागत के लिए सज चुका था।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 71 (एकसप्ततितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: भगवान की इन्द्रप्रस्थ-यात्रा
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); कथा के भीतर उद्धव श्रीकृष्ण को परामर्श देते हैं
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका की राजसभा; आनर्त, कुरुक्षेत्र और पांचाल का मार्ग; इन्द्रप्रस्थ
- केंद्रीय विषय: उद्धव का परामर्श; रानियों और सेना सहित भगवान की यात्रा; इन्द्रप्रस्थ में पुनर्मिलन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 1–45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

सत्तरवें अध्याय में जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाए गए राजाओं का दूत द्वारका आकर रक्षा की याचना करता है, और लगभग उसी समय देवर्षि नारद यह समाचार लाते हैं कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं और श्रीकृष्ण की उपस्थिति के लिए व्याकुल हैं। दो पुकारों के बीच खड़े भगवान मुस्कराकर उद्धव की ओर मुड़ते हैं और यदुवंश के “नेत्र” उस सखा से पूछते हैं कि अब क्या किया जाए।

उद्धव दोनों पुकारों को तौलते हैं

भगवान के वचन सुनकर महाबुद्धिमान उद्धव ने देवर्षि नारद के सन्देश, सभासदों के मत और स्वयं श्रीकृष्ण की इच्छा — तीनों पर विचार किया, और तब बोले। भगवान को अपने भाई युधिष्ठिर के महायज्ञ में अवश्य सहायता करनी चाहिए, उन्होंने कहा, और साथ ही उन राजाओं की भी रक्षा करनी चाहिए जिन्होंने उनकी शरण ली है। क्योंकि राजसूय का अधिकार केवल उसी सम्राट को है जिसे दसों दिशाओं के राजा स्वीकार कर चुके हों — और मगधराज जरासन्ध इस मार्ग में चट्टान की तरह खड़ा था।

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।

अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

yaṣṭavyaṁ rājasūyena dik-cakra-jayinā vibho ato jarā-suta-jaya ubhayārtho mato mama

अर्थ: हे विभो, राजसूय यज्ञ वही कर सकता है जिसने समस्त दिशा-मण्डल पर विजय पाई हो; अतः मेरे मत में जरासुत पर विजय से दोनों ही प्रयोजन एक साथ सिद्ध हो जाएँगे। (स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 3)



द्वारका की सभा में उद्धव निवेदन करते हैं कि राजसूय केवल दिग्विजयी का अधिकार है, अतः जरासन्ध पर विजय यज्ञ और बन्दी राजाओं — दोनों की सेवा करेगी (श्लोक 3)।

उद्धव ने आगे कहा कि इस एक कार्य से यादवों का बड़ा लाभ होगा, और बन्दी राजाओं की मुक्ति से गोविन्द का यश फैलेगा। किन्तु जरासन्ध सरल शत्रु नहीं था: उसमें दस हजार हाथियों का बल था, और उसके समान बलशाली भीम के अतिरिक्त कोई उसके सामने टिक नहीं सकता था। उसे केवल द्वन्द्व-युद्ध में ही जीता जा सकता था, कभी भी उसकी सौ अक्षौहिणी सेनाओं के घेरे में नहीं। पर वह ब्राह्मणों का भक्त था और उनकी माँग कभी नहीं टालता था — इसलिए भीम ब्राह्मण के वेश में उसके पास जाकर द्वन्द्व का वरदान माँगे; भगवान की उपस्थिति में भीम उसे अवश्य मार डालेंगे।

फिर उद्धव ने अपने परामर्श को रणनीति से ऊपर उठाकर उस सत्य तक पहुँचाया कि परिणाम पर वास्तव में किसकी इच्छा का शासन है।

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।

हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥

nimittam param īśasya viśva-sarga-nirodhayoḥ hiraṇyagarbhaḥ śarvaś ca kālasyārūpiṇas tava

अर्थ: आप ही परमेश्वर हैं, रूपरहित काल हैं; विश्व की सृष्टि और संहार के कारण केवल आप हैं, और हिरण्यगर्भ तथा शर्व तो उसमें मात्र आपके निमित्त हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 8)

उद्धव बोले — उस अत्याचारी के गिरते ही मुक्त राजाओं की रानियाँ अपने घरों में इस महान कर्म का गान करेंगी, जैसे गोपियाँ अपने उद्धार का, ऋषिगण गजेन्द्र और सीता की रक्षा का, और हम यादव आपके माता-पिता की मुक्ति का गान करते हैं। इस प्रकार जरासन्ध-वध से अनेक प्रयोजन एक साथ सिद्ध होंगे; राजाओं का पुण्य और उनके बन्दीकर्ता का पाप दोनों फलने को तैयार हैं, और यह यज्ञ स्वयं भगवान को भी प्रिय है।

भगवान परामर्श स्वीकार करते हैं

शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा कि उद्धव का यह परामर्श हर दृष्टि से कल्याणकारी था, और देवर्षि, यदुवंश के वृद्धजनों तथा स्वयं श्रीकृष्ण ने उसका सम्मान किया। जिन्हें उद्धव ने अभी-अभी रूपरहित काल कहा था, उन्होंने कोई आज्ञा घोषित नहीं की; उन्होंने अपने भक्त से पूछा, सुना और उसकी सलाह मान ली। जिन्हें किसी मन्त्री की आवश्यकता नहीं, वे मन्त्रणा लेना चुनते हैं, ताकि सेवक की बुद्धि गौरवान्वित हो और पूरी सभा इस कार्य में जुड़ जाए। और यह कार्य ऐसा रचा गया कि एक ही यात्रा बन्दी राजाओं को छुड़ाए, युधिष्ठिर का यज्ञ सफल करे और असंख्य घरों को उनकी कृपा के गीतों से भर दे। भगवान का हर पग अनेकों के लिए वरदान बनता है, और वे उसे अपने प्रेमियों के संग उठाते हैं।

तब देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ने गुरुजनों की अनुमति से अपने सेवकों दारुक, जैत्र आदि को यात्रा की तैयारी का आदेश दिया। बलराम और राजा उग्रसेन से आज्ञा लेकर उन्होंने अपनी रानियों और पुत्रों को परिवार-सामग्री सहित आगे भेज दिया, और दारुक द्वारा लाए गए गरुडध्वज रथ पर आरुढ़ हुए। मुकुन्द के दर्शन से तृप्त-हृदय देवर्षि नारद यदुपति से सम्मानित होकर उन्हें प्रणाम कर, भगवान के रूप को हृदय में धारण किए आकाश-मार्ग से चले गए।

द्वारका से यात्रा प्रस्थान

भगवान अपनी विकराल सेना — रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदल, अपने-अपने सेनापतियों के अधीन — से घिरे चले, जबकि मृदंग, नगाड़े, शंख और तुरही की गर्जना दिशाओं में गूँज उठी। उनके पीछे रुक्मिणी आदि भक्तिमयी रानियाँ अपने बच्चों के साथ, आभूषण, चन्दन और मालाओं से सजी, पालकियों और स्वर्ण-शिविकाओं में तलवारधारी रक्षकों के पहरों में चलीं। फिर सेवकों के परिवार आए — तम्बू और सामान बैल, भैंसों, गधों और खच्चरों पर लदे, स्त्रियाँ गाड़ियों में या ऊँटों और हाथियों पर। सूर्य के प्रकाश में वह विशाल सेना अपनी ऊँची पताकाओं, छत्रों, चँवरों, शस्त्रों, मुकुटों और कवचों सहित ऐसे गरजती और चमकती चली, जैसे लहरों और मगरमच्छों से उद्वेलित सागर।



दारुक द्वारा लाए रथ पर आरुढ़ होकर भगवान अपनी सेना और रानियों की शिविकाओं को द्वारका से बाहर ले चलते हैं, जबकि नगाड़े और शंख दिशाओं को भर देते हैं।

चलने से पहले भगवान बन्दी राजाओं के दूत की ओर मुड़े और मधुर वचनों से उसे धीरज बँधाया: “दूत, अब भय मत करो; तुम्हारा कल्याण हो। मैं मगधराज की मृत्यु का प्रबन्ध करूँगा।” दूत विदा हुआ और यह वचन निष्ठापूर्वक राजाओं तक पहुँचाया, जो मुक्ति की लालसा में श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुक प्रतीक्षा करने लगे।

नदियों और राज्यों के पार

भगवान आनर्त, सौवीर और मरुभूमि से होकर, तथा कुरुक्षेत्र के विनशन से गुज़रते हुए, अनेक पर्वतों और नदियों को पार करते, नगर, गाँव, घोष और खानें पीछे छोड़ते चले। फिर दृषद्वती और सरस्वती को पार कर वे पांचाल और मत्स्य देशों से होते हुए अन्ततः इन्द्रप्रस्थ पहुँचे।

जब अजातशत्रु युधिष्ठिर ने सुना कि भगवान — जिनके दर्शन मनुष्य-नेत्रों को दुर्लभ हैं — पधारे हैं, तो वे आनन्दविभोर हो गए और पुरोहितों, मित्रों और बन्धुओं के साथ उनकी अगवानी के लिए नगर से बाहर निकल पड़े। मंगलगान, अनेक वाद्यों के स्वर और वेदों के उच्च घोष के बीच वे हृषीकेश की ओर ऐसे उत्साह से बढ़े, जैसे लौटे हुए प्राणों के साथ इन्द्रियाँ फिर से सजीव हो उठती हैं।

इन्द्रप्रस्थ का आलिंगन

इतने लम्बे वियोग के बाद श्रीकृष्ण को देखकर युधिष्ठिर का हृदय स्नेह से पिघल गया, और उन्होंने अपने परम प्रिय सखा को बार-बार गले लगाया। उस आलिंगन में उनका हर अमंगल झर गया; नेत्र भर आए, रोम खड़े हो गए, और वे संसार को भूल गए।

दोभ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥

dorbhyāṁ pariṣvajya ramāmalālayaṁ mukunda-gātraṁ nṛ-patir hatāśubhaḥ lebhe parāṁ nirvṛtim aśru-locano hṛṣyat-tanur vismṛta-loka-vibhramaḥ

अर्थ: लक्ष्मी के निर्मल धाम मुकुन्द के श्रीविग्रह को दोनों भुजाओं से आलिंगन कर राजा समस्त अशुभ से मुक्त हो गए और परम आनन्द को प्राप्त हुए; उनके नेत्रों में अश्रु छलक आए, शरीर पुलकित हो उठा और लोक का भ्रम उनके मन से विस्मृत हो गया। (स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 26)

भीम ने भी खुलकर मुस्कराते हुए अपने भाई को गले लगाया, उनकी इन्द्रियाँ प्रेमाश्रुओं से भर गई; और अर्जुन तथा जुड़वाँ नकुल-सहदेव ने आनन्द से बहते नेत्रों के साथ अपने परम हितैषी अच्युत को बाँहों में भर लिया। श्रीकृष्ण ने भी ब्राह्मणों और वृद्धजनों को उनके पद के अनुसार प्रणाम किया, और कुरु, संजय तथा कैकय प्रमुखों का सम्मान किया। सूत, मागध, गन्धर्व और वन्दीजन मृदंग, शंख, वीणा और ढोल पर गाते-नाचते रहे, ब्राह्मण उनकी स्तुति करते रहे; और इस प्रकार प्रियजनों से घिरे, पुण्यश्लोक-शिरोमणि भगवान सजे हुए नगर में प्रविष्ट हुए।

सजा हुआ नगर

इन्द्रप्रस्थ के मार्ग सुगन्धित जल और मतवाले हाथियों के मद से सिंचे थे; स्वर्ण-तोरणों पर चमकीली पताकाएँ फहरा रही थीं, और हर द्वार पर जल से भरे कलश रखे थे। स्नान और अनुलेपन किए नगरवासी नए रेशमी वस्त्रों, रत्नों और मालाओं में दमक रहे थे। हर घर के सामने दीप जल रहे थे, झरोखों से धूप की सुगन्ध उठ रही थी, और हर छत पर स्वर्ण-कलश और रजत-शिखर सुशोभित थे। ऐसी थी वह कुरु-राजधानी जिसे श्रीकृष्ण गुज़रते हुए निहार रहे थे।



छतों से इन्द्रप्रस्थ की स्त्रियाँ मुकुन्द पर पुष्पवर्षा करती हैं और उन रानियों के पुण्य पर विस्मित होती हैं जो चन्द्रमा के संग तारों की तरह उनके साथ चलती हैं (श्लोक 35)।

यह सुनकर कि मनुष्य-नेत्रों का एकमात्र सच्चा उत्सव पथारा है, नगर की युवतियाँ अपने घरेलू काम छोड़कर — यहाँ तक कि पतियों को शय्या पर ही छोड़कर — राजमार्ग की ओर दौड़ पड़ीं। मार्ग हाथियों, घोड़ों, रथों और जनसमूह से भरे थे, इसलिए वे छतों पर चढ़ गईं, और वहाँ से रानियों सहित श्रीकृष्ण को देखकर उन पर पुष्पवर्षा की, मन-ही-मन उनका आलिंगन किया और मुस्कानों से उनका स्वागत किया।

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोदुपसहाः किमकार्यमूभिः ।

यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोकलयोत्सवमातनोति ॥ ३५ ॥

ūcuḥ striyaḥ pathi nirīkṣya mukunda-patnīs tārā yathodupa-sahāḥ kim akāry amūbhiḥ yac cakṣuṣāṁ puruṣa-maulir udāra-hāsa-līlāvaloka-kalayotsavam ātanoti

अर्थ: मार्ग पर चन्द्रमा के संग तारों के समान मुकुन्द की पत्नियों को देखकर स्त्रियाँ कहने लगीं: “इन देवियों ने ऐसी कौन-सी तपस्या की है, कि पुरुषशिरोमणि अपनी उदार मुस्कान और लीलामय चितवन की कला से इनके नेत्रों के लिए ऐसा उत्सव रचते हैं?” (स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 35)

स्थान-स्थान पर निष्पाप प्रमुख नागरिक और श्रेणियों के मुखिया हाथों में मंगल-सामग्री लिए आगे आए और भगवान की पूजा की।

पाण्डवों के राजभवन में

राजपरिवार की स्त्रियों द्वारा आनन्द से खिले विशाल नेत्रों और उत्सुक आदर से स्वागत किए गए मुकुन्द राजा के भवन में प्रविष्ट हुए। जब कुन्ती — पृथा — ने अपने भाई के पुत्र, त्रिलोकीनाथ को देखा, तो उनका हृदय उमड़ पड़ा; वे तुरन्त अपने आसन से उठीं और पुत्रवधू द्रौपदी के साथ उन्हें अपने आलिंगन में भर लिया।



भवन के भीतर कुन्ती द्रौपदी के साथ उठकर अपने भाई के पुत्र को गले लगाती हैं, और हर्ष से अभिभूत राजा को स्मरण नहीं रहता कि अपने अतिथि की पूजा कैसे करें (श्लोक 39)।

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ।
पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ३९ ॥

govindam gṛham āṇīya deva-deveśam ādṛtaḥ pūjāyām nāvidat kṛtyam pramodopahato nṛpaḥ

अर्थ: देवों के भी देवेश्वर गोविन्द को अपने घर ले आकर श्रद्धावान राजा हर्ष से इतने अभिभूत हो गए कि उन्हें यह भी स्मरण न रहा कि पूजा का कौन-सा विधान करना है। (स्कन्ध 10, अध्याय 71, श्लोक 39)

श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ और अन्य वृद्ध स्त्रियों को प्रणाम किया, और द्रौपदी तथा अपनी बहन सुभद्रा से स्वयं आदरपूर्वक अभिवादित हुए। सास की प्रेरणा से द्रौपदी ने भगवान की रानियों — रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, सती सत्या और अन्य — का वस्त्रों, मालाओं और आभूषणों से सत्कार किया। धर्मराज ने फिर जनार्दन को उनकी सेना, सेवकों, मन्त्रियों और रानियों सहित सुखपूर्वक ठहराया, और प्रतिदिन नई-नई सामग्री जुटाते रहे।

उसी प्रवास में भगवान ने अर्जुन के साथ खाण्डव वन अग्निदेव को अर्पित कर उन्हें तृप्त किया, और मय दानव की रक्षा की, जिसने कृतज्ञता में राजा के लिए एक दिव्य सभा-भवन बनाया। युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए भगवान कई महीनों तक इन्द्रप्रस्थ में रहे, और बीच-बीच में अपने योद्धाओं के बीच अर्जुन के साथ रथ पर विहार को निकलते रहे।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान अपने भक्त के परामर्श का स्वागत करते हैं। यद्यपि उद्धव स्वयं श्रीकृष्ण को सबके कारण काल कहते हैं (श्लोक 8), भगवान सलाह माँगते हैं और उसका सम्मान करते हैं। प्रियजनों के आगे विनम्रता दिव्यता की दुर्बलता नहीं; यही वह रीति है जिससे भगवान अपना कार्य बाँटते हैं।
2. कृपा का एक कार्य अनेक प्रयोजन सिद्ध करता है। उद्धव देखते हैं कि जरासन्ध की पराजय यज्ञ और बन्धियों — दोनों की सेवा करेगी (श्लोक 3)। भगवान एक भक्त के लिए जो भी करते हैं, उससे अनेक धन्य होते हैं।
3. उनका वचन ही मुक्ति है। “अब भय मत करो,” वे दूत से कहते हैं, और राजाओं की लम्बी प्रतीक्षा आशा में बदल जाती है। शरणागत को दिया गया भगवान का वचन कर्म के समान ही निश्चित है।
4. भगवान का स्पर्श संसार का भ्रम मिटा देता है। युधिष्ठिर के आलिंगन में सारा अमंगल नष्ट हो जाता है और लौकिक भ्रम विस्मृत हो जाता है (श्लोक 26)। श्रीकृष्ण से प्रेमपूर्ण संयोग वह कर देता है जो वर्षों का संघर्ष नहीं कर पाता।
5. प्रेम विधि-विधान भुला देता है। धर्म के ज्ञाता युधिष्ठिर को स्मरण ही नहीं रहता कि अपने अतिथि की पूजा कैसे करें (श्लोक 39)। भगवान उस विह्वलता को ही सर्वोच्च अर्पण के रूप में स्वीकार करते हैं।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हमें सबसे अधिक जो छूता है, वह यात्रा का वैभव नहीं, बल्कि परमेश्वर का मार्गदर्शन माँगना है। जो ब्रह्मा और शिव को अपने निमित्त के रूप में धारण करते हैं, वे उद्धव की ओर कान झुकाते हैं, और फिर उसी योजना पर चलते हैं जो एक सखा ने रची है। इस भाव में भगवान दिखाते हैं कि दिव्यता इस संसार में कैसे कार्य करती है: भक्तों को ठेलकर नहीं, बल्कि उन्हें अपने में समेटकर, ताकि उनकी बुद्धि, बल और प्रेम उनकी रचना के धागे बन जाएँ। भीम लड़ेंगे, राजा छूटेंगे — फिर भी उद्धव बता चुके हैं कि वास्तव में केवल काल-स्वरूप भगवान ही कर्ता हैं। हम भी अपना श्रेष्ठतम विचार और प्रयास अर्पित करें, और फल उन्हीं का जानकर विश्राम करें। और जब लम्बा मार्ग समाप्त होता है, तो नगर-द्वार पर वह आलिंगन है, जहाँ एक विवेकी राजा ने पाया कि भगवान को बाँहों में भरने के आगे उसका पूरा राज्य कुछ नहीं। हमारी यात्राएँ भी वहीं समाप्त हों।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज किसी भी निर्णय से पहले उद्धव की तरह ठहरिए और भीतर ही भगवान से पूछिए कि क्या आपके कर्तव्य और आश्रितों — दोनों की सेवा करेगा; फिर फल उनके हाथों में छोड़ दीजिए। संध्या में स्मरण कीजिए कि युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से मिलने कैसे दौड़ पड़े, और अपने मन को भी उसी उत्सुकता से उनकी ओर दौड़ने दीजिए, धीरे-धीरे दोहराते हुए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय भगवान को द्वारका की मन्त्रणा-सभा से पाण्डवों के स्नेहमय गृह तक ले जाता है। उद्धव के विवेकपूर्ण शब्द दिखाते हैं कि राजाओं की मुक्ति और युधिष्ठिर का यज्ञ एक ही कार्य हैं, और काल-स्वरूप श्रीकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक अपने सखा की योजना अपना लेते हैं। यात्रा, वचन और पथ उस पुनर्मिलन में पूर्ण होते हैं जहाँ आँसू विधि का स्थान ले लेते हैं और धर्मराज भी आतिथ्य के विधान भूल जाते हैं। स्मरण रखें कि सृष्टि के संचालक भगवान आज भी अपने प्रेमियों के संग चलने में आनन्द पाते हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य प्रज्ञा हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 71।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा से प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या भाष्य की प्रतिलिपि नहीं है। किसी प्रकाशक से सम्बद्धता या अनुमोदन का कोई दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-71-the-lord-travels-to-indraprastha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट